Shabdarnav : *An International Peer Reviewed Refereed Journal of Multidisciplinary Research* | ISSN - 2395-5104
वर्ष–11, अंक–22, भाग–3, जुलाई–दिसम्बर, 2025 | **Impact Factor : 7.705**

जगद्गुरु शंकराचार्य के शैक्षिक विचारों की वर्तमान शिक्षा में उपादेयता

डॉ0 ऋतम्भरा श्रीवास्तव*

*असिस्टेन्ट प्रोफेसर (शिक्षक–शिक्षा विभाग) प्रो0 एच0एन0 मिश्रा कॉलेज ऑफ एजूकेशन, कानपुर (उ0प्र0)।

सारांश – शंकराचार्य भारतीय जनमानस के ही नहीं अपितु सम्पूर्ण मानव जाति के लिए एक महान वरदान थे। उन्होंने मानव जाति के उत्थान के लिए कई महत्वपूर्ण कार्य करते हुए अल्पायु में ही एक आदर्श सम्पूर्ण विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया और विश्ववन्धुत्व तथा भाईचारा को बढ़ावा देने के साथ–साथ तात्कालिक शिक्षा–व्यवस्था में कई महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया। प्रयोजनवादी विचारधारा के अनुसार इस परिवर्तनशील संसार में कोई भी सत्य अटल व स्थिर नहीं होता अपितु वह आवश्यकतानुसार प्रत्येक काल और युग की परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तित होता रहता है। आचार्य शंकर की शिक्षा में जहां एक ओर आध्यात्मिक पक्षों को प्रधानता दी गयी है वहीं दूसरी ओर व्यावहारिक पक्षों का भी पर्याप्त समावेश किया गया है। व्यावहारिक पक्ष में निहित तत्व आधुनिक शैक्षिक सन्दर्भ में विचारणीय एवं उपयोगिता के आधार पर स्वीकार किये जा सकते हैं। शंकर शिक्षा दर्शन मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक होते हुए भी अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों, मान्यताओं, आदर्शों एवं मूल्यों से गर्भित है जिनको शिक्षा व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए।

महत्वपूर्ण शब्द :– जगद्गुरू शंकराचार्य, वर्तमान शिक्षा, शैक्षिक विचार।

प्रस्तावना :– संपूर्ण सृष्टि में हमें दो प्रकार की वस्तुएँ देखने को मिलती है–एक मानव निर्मित तथा दूसरी प्राकृतिक। मानव निर्मित वस्तुओं में उनके रचनाकार का अस्तित्व पता चलता है। प्राकृतिक वस्तुओं में उनका रचनाकार अदृश्य रहता है। रचना को देखकर उसके रचनाकार का सहज अनुमान लगाया जाता है। प्राकृतिक नियम एक अद्भुत तथा विस्मयकारी तंत्र द्वारा संचालित होते हैं। इस तंत्र को चलाने वाला अदृश्य रहता है फिर भी उसकी सत्ता से इन्कार नहीं किया जा सकता। इसी सत्ता को भारत के दार्शनिकों एवं धर्माचार्यों ने ईश्वर अथवा ब्रह्म नाम दिया है। शंकर इस ब्रह्माण्ड के मूल में केवल ब्रह्म की सत्ता स्वीकार करते हैं। उनका ब्रह्म अनादि अनन्त और निराकार है। यह एक ऐसी पारमार्थिक सत्ता है जो सृजन भी करती है और विनाश भी। इस सत्ता को शंकर ने अद्वैत ब्रह्म कहा है। शंकर का अद्वैत वेदान्त पूर्णरूप से वेद तथा उपनिषद मूलक है। शिक्षा की दृष्टि से भी सर्वाधिक महत्व इसी अद्वैत वेदान्त दर्शन का है क्योंकि छात्र का व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक विकास इसी दर्शन के अध्ययन से संभव है।

जगद्गुरू शंकराचार्य एक महान व्यक्ति ही नहीं अपितु अपने आप में एक महान संस्था थे वे भारत के स्वर्णिम इतिहास में जगमगाते हुए सूर्य और चन्द्र हैं। जो अपनी पहचान एक दिव्य मणि के समान रखते हैं। सनातन धर्म की पुर्नस्थापना में उनके योगदान को किसी भी रूप में भुलाया नही जा सकता है। सनातन धर्म विश्व का एक ऐसा धर्म है जो अपने जन्म काल से लेकर आधुनिक काल तक अनेक प्रकार के संक्रमणकाल से गुजरने के पश्चात भी अपनी अलौकिक आभा और दिव्य तेज के आलोक में सबको प्रकाशित करते चला आ रहा है। इस धर्म की कुछ न कुछ मूल बातें सभी धर्मों में स्पष्ट रूप से देखने को मिल जाती है। आदिगुरू शंकराचार्य, लोकनायक तुलसीदास, स्वामी विवेकानन्द, राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी इत्यादि इस धर्म के महान सुपुत्र समय पर उत्पन्न होकर समाज के उन्नयन के लिए अपने आपको आत्मोत्सर्ग किया है। ऐसे ही विलक्षण व्यक्तित्व के परिचायक आचार्य शंकर का आविर्भाव भारतीय इतिहास की एक महानतम्, अद्भुत व अविस्मरणीय घटना मानी जाती है। जो समस्त भारतीयों के लिए एक महानतम् उपलब्धि रही है।

शंकराचार्य का समय :– शंकराचार्य के समय के विषय में आज तक विद्वानों में मतभेद बना हुआ है। शंकराचार्य ने अपने किसी भी ग्रंथ में कहीं भी समय का उल्लेख नहीं किया है। कुछ विद्वान उन्हें ईसा पूर्व में होने की बात करते हैं, तो कुछ के अनुसार वे नवीं शताब्दी में उत्पन्न हुए माने जाते हैं। बंग्लौर के श्री सूर्यनारायण राव ने अपने ग्रंथ 'विजय नगर का इतिहास' में श्रृंगेरी मठ की गुरू परम्परा प्रकाशित की है जिसके अनुसार शंकराचार्य का आविर्भाव काल लगभग 2015 वर्ष पूर्व अर्थात् ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में हुआ था। द्वारका मठ की गुरू परम्परा में एक ग्रंथ है जिसके अनुसार शंकराचार्य का जन्म ईसा से लगभग 500 वर्ष पूर्व हुआ था। ज्योतिषपीठ गुरू परम्परा को भी यही समय मान्य है। कांची मठ या कामकोटि पीठ के अनुसार भी

Scanned with OKEN Scanner

आचार्य शंकर का जन्म ईसा पूर्व छठी शताब्दी में ही हुआ था। 'केरलोत्पत्ति' नामक ग्रंथ में शंकराचार्य के जन्म को 400 ई0 माना गया है। अधिकांश विद्वान आचार्य शंकर का आविर्भाव आठवीं शताब्दी का उत्तरार्ध मानते हैं। इस सम्बन्ध में मैक्समूलर और प्रो0 मैक्डानल का अनुमान है कि शंकराचार्य का जन्म काल 788 ई0 तथा मृत्युकाल 820 ई0 है। इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर शंकराचार्य का काल 788 ई0 से 820 ई0 मानना अधिक न्यायसंगत प्रतीत होता है इसी काल को डा0 राम मूर्ति शर्मा भी स्वीकार करते है । डा0 के0वी0 पाठक तथा आधुनिक युग के अनेक भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वान इसी मत के समर्थक हैं। डा0 राम शकल पाण्डेय ने अपनी पुस्तक 'विश्व के श्रेष्ठ शिक्षाशास्त्री' में शंकर को आठवीं शताब्दी के अंत में माना है। उनके अनुसार शंकराचार्य का जन्म 788 ई0 में तथा मृत्यु 32 वर्ष की अवस्था में सन् 820 में हुई थी। इस प्रकार अनेक प्रमाणों के आधार पर यह प्रमाणित होता है कि जगद्गुरू शंकराचर्य का अवतरण 788 ई0 में तथा उनकी मृत्यु 820 ई0 में हुई थी किन्तु कतिपय पुराण आदि ग्रंथों में मठों की परम्परा के आधार पर उनका आविर्भाव आज से लगभग 2500 वर्ष पूर्व मानना अधिक तर्क संगत प्रतीत होता है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व : शंकराचार्य के शैक्षिक दर्शन को लेकर विद्वानों में अनेक प्रकार की भ्रांतियाँ विद्यमान हैं। विश्वविद्यालयों में दर्शनशास्त्र विभाग एवं शिक्षाशास्त्र विभाग के अध्येताओं एवं प्रशिक्षुओं को इस सम्बन्ध में जो कुछ भी पढाया जाता है वह संतोषजनक नहीं है। प्रायः अधिकांश लेखकों ने यह समझाने का प्रयास किया है कि आचार्य शंकर ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ की सत्ता स्वीकार नहीं करते हैं। अतएव उनकी शिक्षा का मूल उद्देश्य ब्रह्म की प्राप्ति मात्र है, उसके अलावा जो कुछ भी है यथा–समस्त जगत का ज्ञान आदि वे सब माया है/भ्रम है/मिथ्या है/इत्यादि। इस प्रकार लौकिक जीवन के लिए उनका शैक्षिक दर्शन कुछ भी नहीं बताता है। प्रायः अनेक लेखकों ने इसी अवधारणा को विभिन्न प्रकार से बिना शंकर की दार्शनिक पृष्ठभूमि को समझे ही व्यक्त किया है। इसी प्रकार कुछ लेखकों ने उनके 'अद्वैतवाद' के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की भ्रमात्मक टिप्पणियाँ की। कुछ लोगों ने यह समझाने का प्रयास किया कि उनका अद्वैत यथार्थ को नकारने की कोशिश करता है और एक काल्पनिक व व्यवहारिक आदर्शवाद की सृष्टि करता है। यहाँ 'अद्वैत वेदान्त' की शास्त्रीय शैली से बचते हुए यथा सक्य सरल भाषा में आचार्य शंकर के शिक्षा–दर्शन की स्थिति को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। संसार के अन्य देशों की तरह भारतीयों की भी यही प्रबल धारणा रही है कि वे एक महान दार्शनिक के साथ–साथ महानतम् शिक्षाशास्त्री भी थे। यही कारण है कि आचार्य शंकर को जगद्गुरू श्रद्धास्पद पदवी से विभूषित किया गया है जो भारतीय जनमानस द्वारा अपनी परम्परा के सर्वोत्तम आचार्य को दी जाने वाली सर्वोत्तम उपाधि है। शंकराचार्य ने भारतीय जनमानस की मूलभूत प्राणशक्ति आध्यात्मिकता को ग्रहण कर अपने 'अद्वैत–सिद्धान्त' की प्रस्थापना की।

सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण – दत्ता, टी0एस0 (1999) ने 'अद्वैत वेदान्त' और महान सार्वभौमिक हृदय बुद्ध' पर अनुसंधान कार्य किया है। मिश्र, एस0सी0 (2000) ने 'जातक कालीन शिक्षा का स्वरूप' नामक शोध पर कार्य करते हुए भारतीय दर्शन का अध्ययन किया है। खोसला, डी0एम0 (2002) ने 'एजूकेशनल फिलॉस्फी ऑफ सिक्ख गुरू' में सिक्ख गुरूओं के सन्दर्भ में 'वेदान्त दर्शन' का अध्ययन किया है। श्रीवास्तव, नीलिमा (2003) ने 'अद्वैत वेदान्त के सन्दर्भ में रामतीर्थ के विचारों का अध्ययन' किया है। तिवारी, दिनेश (2007) ने 'वर्तमान भारतीय शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में यथार्थ ज्ञान एवं मूल्यों की संकल्पना तथा शैक्षिक निहितार्थ' के विशिष्ट सन्दर्भ में सांख्यदर्शन का अध्ययन किया गया है।

अध्ययन के स्रोत – प्रस्तुत वर्णनात्मक अनुसंधान दार्शनिक प्रकृति का है इसलिए इसके साक्ष्य दार्शनिकों द्वारा लिखे गये ग्रन्थों, कृतियों व पुस्तकों में मिलता है। यथा–ग्रन्थ शंकराचार्य–शारीरिक भाष्य, प्रकाशानन्द–वेदान्त सिद्धान्त, शंकराचार्य–'ब्रह्मसूत्र' शांकर, भाष्य नरहिर स्वामी–बोधसार, श्री हरि शर्मा–वेदान्त सुधा, महर्षि वेद ब्यास–श्री मद्भागवत्, पुराण भास्कर– ब्रहम सूत्र भाष्य, रामानुजाचार्य– वेदान्तसार

जगद्गुरू शंकराचार्य के शिक्षा सम्बन्धी विचार– शंकर दर्शन वस्तुतः श्रुत्यानुमोदित कृत्य सम्पादन का कट्टर पक्षधर है। अतएव 'पुरूषार्थ चतुष्टय' एवं वर्णाश्रम व्यवस्था की रक्षा करना तथा उसमें भी परम पुरूषार्थ की प्राप्ति शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है। वेदानुकूल विधियों एवं निषेधों का सम्यक् परिपालन करते हुए 'ब्रह्मयेक वाद' अथवा अद्वैत में प्रतिष्ठित होना शंकराचार्य के दर्शन का मुख्य लक्ष्य है। आश्रम चार हैं– 1. ब्रह्मचर्य आश्रम 2. गृहस्थ आश्रम 3. वानप्रस्थ आश्रम 4. संन्यास आश्रम।

Scanned with OKEN Scanner

प्रत्येक आश्रम 25–25 वर्षों का है जिसमें ब्रह्मचर्य आश्रम सबके जीवन का अध्ययन काल है। आधुनिक अर्थों में शिक्षा ग्रहण करने की अवधारणा, परम्परा में प्रचलित विद्याध्ययन हेतु बने ब्रह्मचर्याश्रम की अनिवार्य आवश्यकता है। जो सम्पूर्ण जीवन काल तक चलती रहती है। अन्य आश्रमों में भी यदि कोई चाहे तो अध्ययन कर सकता हैं यहाँ तक कि संन्यासाश्रम में भी इनका निषेध नहीं है किन्तु ब्रह्मचर्याश्रम में तो विद्याध्ययन अनिवार्य ही है। विद्या अनात्मविज्ञान को निवृत्त करती हुई उसकी निवृत्ति द्वारा स्वाभाविक अमृतत्व की हेतु बनती है।

शंकराचार्य के शिक्षा सम्बन्धी विचारों को निम्नवत रूप में समझा जा सकता है–

1. शिक्षा का अर्थ– 'शिक्षा' शब्द विद्या शब्द का समानार्थी है। शंकराचार्य के अनुसार 'विद्या' शब्द विद् धातु से बना है जो ज्ञान के अर्थ में प्रयुक्त होता है। लौकिक और अलौकिक भेद से ज्ञान द्विविधात्मक है। इसे प्राप्त करने की विधा ही 'विद्या' है। विद्या मात्र विद्या ही नहीं है अपितु यह विधेय भी है। विद्या से युक्त होना ही विद्वान होना है, ज्ञानी होना है। जो विद्याध्ययन कराता है वह गुरू 'पद' वाच्य है। जहाँ यह कार्य सम्पादित होता है वह गुरूकुल कहलाता है। जो आज के शिक्षा मंदिरों का प्राचीन संस्करण है। जो विद्या का इच्छुक है, जो ज्ञान की प्रबल पिपासा रखता है, जो अध्ययनोत्सुक है वही विद्यार्थी है।

2. शिक्षा के उद्देश्य– शंकराचार्य के सिद्धान्त में धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष। इस पुरूषार्थ चतुष्टय में मोक्ष को ही सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया गया है। इस प्रकार शंकराचार्य के अनुसार मुक्ति ही शिक्षा का प्रमुख तथा एकमेव लक्ष्य है किन्तु अप्रत्यक्ष तथा सहकारी रूप से अन्य लक्ष्यों को भी उन्होंने प्रतिपादित किया है। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य इस प्रकार होना चाहिए जिससे बालक को 'ब्रह्म' का ज्ञान हो सके। वेदान्त में ब्रह्मविचार की प्रधानता होने के कारण ब्रह्मजिज्ञासा का अत्याधिक महत्व है। अतः शंकर शिक्षा को ब्रह्मविद्या कहते हैं। इस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य 'ब्रह्म' की प्राप्ति होनी चाहिए।

3. पाठ्यक्रम– शिक्षा के जैसे–जैसे उद्देश्य होते हैं उसी के अनुरूप पाठ्यक्रम भी निर्धारित होता है। किसी विषय की आवश्यकता एवं अनावश्यकता का निर्धारण जीवन–दर्शन के आधार पर ही होता है। शंकराचार्य ने पाठ्यक्रम के प्रति अपने दृष्टिकोण आधुनिक शिक्षाशास्त्रियों के विपरीत रूप में प्रस्तुत किया है। समस्त शैक्षिक प्रक्रिया का आयोजन इसी लक्ष्य को लेकर किया जाता है। अतः शंकराचार्य के अनुसार पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो व्यक्ति को परम् पुरूषार्थ मुक्ति (मोक्ष) की प्राप्ति कराये।

4. पाठ्य सहगामी क्रियाएँ– शंकराचार्य ने ऐसी क्रियाओं को ज्ञानार्जन में सहायक होना बताया है। उन पर वेदान्त में बड़ा ध्यान दिया गया है। शंकर दर्शन में मनुष्य के मन को संयमित रखने के लिए अनेक प्रकार की क्रियाओं का विधान मिलता है। उन्होंने वेदान्त अध्ययन के साथ देवाराधना, श्रुति, और शास्त्रों का श्रवण, पवित्र तीर्थ स्थानों के दर्शन, और गुरू का सेवा करने से पाप का निवृत्त होना माना गया है।

5. शिक्षण विधियाँ– अन्तःकरण की वृत्ति को बोध का आधर मान लेने से शंकर वेदान्त में ज्ञान प्राप्ति के समस्त साधनों की प्रस्तावना में यही हेतु रहा है कि, "मनुष्य के अन्तःकरण में ब्रह्माकार वृत्ति का उदय किस प्रकार हो, जिसके द्वारा ब्रह्मबोध रूप परम्लक्ष्य की प्राप्ति मनुष्य को हो सके।" इस प्रकार शंकराचार्य ने शिक्षण विधियों में निम्न विधियों का उल्लेख किया है। श्रवण विधि 2. मनन विधि 3. निदिध्यासन विधि 4. प्रश्नोत्तर विधि 5. तर्क विधि 6. व्याख्या विधि 7. कथा–कथन विधि 8. उपदेश विधि 9. अध्यारोप तथा अपवाद विधि 10.दृष्टान्त विधि (उदाहरण विधि)।

6. छात्र (विद्यार्थी)– शंकराचार्य छात्र को मात्र शरीर नहीं मानते हैं। उनके अनुसार वह ब्रह्म अथवा आत्मा है। 'तत्वमसि' वह अनन्त शक्ति सम्पन्न है तथा उसमें अनन्त ज्ञान की संभावना है। शंकराचार्य बालक में व्यक्तिगत भिन्नता को स्वीकार करते हैं। क्योंकि संसार में एक ही गुरू से श्रवण (अध्ययन) करने वालों में कोई छात्र ठीक–ठीक समझ लेता है, कोई ठीक नहीं समझता है, कोई उलटा समझ बैठता है और कोई समझता ही नही। विद्यार्थी के संबंध में उनका कहना है कि "जो शमादि साधन से रहित तथा अभिमान और रागद्वेष से युक्त है। उसको ब्रह्म का ज्ञान नहीं हो सकता है।

7. शिक्षक (गुरू)– शंकर भाष्य में गुरू के महत्व को मुक्त कंठ से स्वीकार करते हुए कहा गया है कि आचार्य से प्राप्त हुई विद्या ही उत्कृष्टता को प्राप्त होती है। शंकरसाहित्य में शिक्षक के लिए गुरू, आचार्य, तथा उपाध्याय आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। गुरू की परिभाषा देते हुए आचार्य शंकर ने कहा है– "जिससे

Scanned with OKEN Scanner

अज्ञान तथा मानसिक ग्रंथियों से मुक्ति मिलती है, गुरू शब्द के अर्थ को जानने वाले उसे ही गुरू कहते है।" शंकराचार्य ने "विवेक चूड़ामणि" में गुरू की संकल्पना पर प्रकाश डालते हुए कहा है– प्राज्ञ गुरू के निकट जाय जिससे उसके भवबन्धन की निवृत्ति हो। जो श्रोत्रिय (वेदज्ञ) हो, निष्पाप हो, कामनाओं से शून्य हो, ब्रह्म वेत्ताओं में श्रेष्ठ हो, ब्रह्म निष्ठ हो, ईंधन रहित अग्नि के समान शान्त हो, अकारण दया सिन्धु हो, और शरणापन्न सज्जनों के बन्धु हो, उन गुरूदेव की विनीत और विनम्र सेवा से, भक्ति पूर्वक अराधना करके, उनके प्रसन्न होने पर निकट जाकर (शिष्य) अपना ज्ञातव्य पूछें।

जगद्गुरू शंकराचार्य के शिक्षा दर्शन की वर्तमान शिक्षा में उपादेयता–आज की परिस्थिति में आचार्य शंकर की तरह ही एक महापुरूष की आवश्यकता है जो भारतीय जनमानस को इस धरती पर प्रतिस्थापित मूल्यों की तरफ पुनः अग्रसर कर सके। शंकराचार्य का जन्म प्रतिकूल सामाजिक, धार्मिक एवं शैक्षिक परिस्थितियों में ही हुआ था। किन्तु शंकराचार्य को 'अद्वैत वेदान्त सिद्धान्त' ने लोगों की द्वैत मानसिकता को समाप्त करके एकत्व की लड़ी में पुनः पिरो दिया। वर्तमान समय में भारतीय शिक्षा–दर्शन का स्वरूप विघटित होकर नष्ट प्राय हो चुका है। आज भी आचार्य शंकर की ही तरह एक सजीव शिक्षा दार्शनिक की आवश्यकता है जिसमें एक उत्कृष्ट चिंतन, मनोविज्ञान, विज्ञान और सामाजिक चेतना का समावेश हो। जीवन के उद्देश्यों के साथ शिक्षा के उद्देश्यों का सामंजस्य नहीं रह गया है। आधुनिक शिक्षा बालक के सर्वांगीण विकास को कर सकने में सक्षम नहीं रह गयी है। बालक का आत्मिक विकास अवरूद्ध तो हुआ ही है। इसी के साथ भौतिकता की दौड़ ने उसकी शारीरिक पुष्टता और मानसिक उन्नयन को भी भ्रमित कर दिया है। यद्यपि शंकराचार्य आत्मिक विकास को प्राथमिकता देते हैं, किन्तु भौतिक पक्षों की पूर्णतः अवहेलना नहीं करते हैं। उनका मानना है कि व्यावहारिक शिक्षा तब तक चलती रहनी चाहिए जब तक कि बालक को आत्म ज्ञान न हो जाय। शैक्षिक उद्देश्यों की दृष्टि से शंकराचार्य यह स्वीकार करते हैं कि बालक में भौतिक उन्नयन के साथ ही साथ आध्यात्मिक उन्नयन की श्रृंखला भी शुरू हो जाती है।

सन्दर्भ :

1. अल्तेयर, ए0एस0 : प्राचीन भारतीय शिक्षा, मनोहर प्रकाशन वाराणसी (1979).
2. अपूर्वानन्द, स्वामी : आचार्य शंकर, रामकृष्ण मठ प्रकाशन नागपुर (2008).
3. पाण्डेय, संगम लाल : नीतिशास्त्र का सर्वेक्षण, सेण्ट्रल पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद, (संस्करण–2005).
4. लाल, रमन बिहारी : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, रस्तोगी पब्लिकेशन मेरठ, (16वां संस्करण–2007).
5. वर्मा, वेदप्रकाश : धर्म दर्शन की मूलभूत समस्यायें, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, (संस्करण–2003).
6. मिश्र, गार्गीशरण : हमारे पथ–प्रदर्शक, विलास प्रकाशन, कानपुर (2002).
7. सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद : धर्म दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली, (संस्करण–1987).
8. शर्मा, चन्द्रधर : भारतीय दर्शन आलोचना और अनुशीलन, मोतीलाल बनारसीदास, पब्लिशर्स, दिल्ली, (1987).

Scanned with OKEN Scanner